RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल-011/2015-17

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 76, अंक : 11 एक प्रति 2 : रुपये
कुल पृष्ठ : 8
रविवार 16 जून, 2019
विक्रमी सम्वत् 2076, सृष्टि सम्वत् 1960853120
दयानन्दाब्द : 195 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये
दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–76, अंक : 11, 13-16 जून 2019 तदनुसार 2 आषाढ़, सम्वत् 2076 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

राजा

ले०-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

तूर्वन्नोजीयान्तवसस्तवीयान्कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत्पुरां दर्त्नुमावत्।।
-ऋ० ६।२०।३

शब्दार्थ-तुर्वन् = शत्रुनाशक ओजीयान् = अधिक ओजस्वी तवसः+तवीयान् = बलवान् से भी बलवान् कृतब्रह्मा = अन्न, धन, ज्ञानादि के सञ्चय का प्रबन्ध करने वाला, वृद्धमहाः = बड़ी शानवाला, बड़े-बूढ़ों का सत्कार करने वाला, इन्द्रः = राजा यत् = जब विश्वासाम् = सम्पूर्ण पुराम् = शत्रुनगरों को दर्त्नुम् = विदीर्ण करने वाली सेना का आवत् = संग्रह करे और रखे, तब वह सोम्यस्य = शान्तिदायक मधुनः = मिठास का राजा = राजा अभवत् = होवे।

व्याख्या-वेद में राष्ट्रधर्म का बहुत सुन्दर उपदेश है, राजा, प्रजा, सभा (Legislative Council) समिति (Military Council), परिषत् (Cabinet), सभासद् आदि सभी के कर्त्तव्यों का बहुत विशद वर्णन है। उस सबके लिए एक-एक पृथक् ग्रन्थ चाहिए। यहाँ केवल अत्यन्त थोड़े-से शब्दों में राजा के गुणों का वर्णन करते हैं-

१. तूर्वन् = शत्रुनाशक। प्रजारंजनात् राजा = प्रजाओं को प्रसन्न रखने में राजा का राजत्व है। प्रजा की प्रसन्नता तभी रह सकती है जब वह अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग शत्रुओं के उपद्रवों से रहित हो।

२. ओजीयान् = दूसरों से अधिक ओजस्वी। यदि दूसरों से अधिक ओजस्वी न हो, तो वह राज्य में व्यवस्था स्थिर न रख सकेगा।

३. तवसस्तवीयान् = बलवान् से भी बलवान्! ओज के लिए बल चाहिए। ओजस्वी होने के साथ सर्वाधिक शक्तिमान् हो।

४. कृतब्रह्मा = धन, अन्न, ज्ञान का सञ्चय करने वाला। राज्य में व्यवस्था के लिए जिन पदार्थों की आवश्यकता हो, उनका संग्रह करने वाला हो।

५. वृद्धमहाः = वृद्धों की पूजा करने वाला हो। इस कर्म से राष्ट्र में उसका शासन अक्षुण्ण बना रहता है।

६. विश्वासां पुरां दर्त्नुमावत् = समस्त शत्रुनगरों को नष्ट करने वाली सेना का रक्षक हो, अर्थात् विजयिनी सेना का अधिपति हो।ऋग्वेद [७।३४।११] में कहा है-'राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायु' = राजा राष्ट्रों [राष्ट्रवासियों] तथा नदियों [गर्जने वाली सेनाओं] का रूप होता है। इसके लिए सदा अदब्ध क्षत्र=क्षात्र बल हो। राजा एक प्रकार से समस्त राष्ट्र का प्रतिनिधि होता है, अतः वह सबका रूप है। अथर्ववेद [४।२२।२] में राजा के सम्बन्ध में कहा है-'वर्ष्म क्षत्राणापयमस्तु राजा' = यह राजा धनियों का धनी हो, और प्रजाओं का स्वामी हो। राजा धनेश्वर, ज्ञानी, तेजस्वी, ओजस्वी, बली, विविध सद्गुण-सम्पन्न प्रजारञ्जक होना चाहिए। (स्वाध्याय संदोह से साभार)

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।।
-यजु० ३१.१४

भावार्थ-जब बाह्य सामग्री के अभाव में संन्यासी विद्वान् महात्मा लोग, संसार कर्ता ईश्वर की उपासना रूप मानस ज्ञान को विस्तृत करें, तब पूर्वाह्णादि काल ही साधनरूप के कल्पना करने चाहिएँ।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्।।
-यजु० ३१.१५

भावार्थ-विद्वान् लोग इस अनेक प्रकार से कल्पित परिधि आदि सामग्री से युक्त मानस यज्ञ को करते हुए, उससे पूर्ण परमेश्वर को जान कर कृतार्थ होते हैं। इस यज्ञ की इक्कीस समिधा रूप सामग्री ऐसी हैं-मूल प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पाँच सूक्ष्म भूत, पाँच स्थूल भूत, पाँच ज्ञान इन्द्रिय और सत्त्व, रजस्, तमस्, ये तीन गुण २१ समिधा हैं। गायत्री आदि सात छन्द परिधि हैं, अर्थात् चारों ओर से सूत के सात लपेटों के समान हैं।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।
-यजु० ३१.१६

भावार्थ-सब मनुष्यों को चाहिये कि विवेक वैराग्य, शम दमादि साधनों से युक्त होकर उस दयामय परमात्मा की उपासना करें। इस संसार में अनादि काल से, इस भक्ति उपासना रूप धर्म से जैसे पहले मुक्त हुए विद्वान्, सदा आनन्द को प्राप्त हो रहे हैं, ऐसे ही हम सब लोग भी, उस जगत्पति जगदीश की श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से उपासना करके, सब दुखों से रहित सदा आनन्द धाम मुक्ति को प्राप्त होवें।

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति देवत्वमाजानमग्रे।।
-यजु० ३१.१७

भावार्थ-सम्पूर्ण संसार का जनक जो परमात्मा, प्रकृति और उसके कार्य सूक्ष्म तथा स्थूल भूतों से, सब जगत् को और उसके शरीरों के रूपों को बनाता है उस ईश्वर का ज्ञान और उसकी वैदिक आज्ञा का पालन ही देवत्व है।

रामायण में सर्वोच्च शासक के कर्त्तव्य व राजधर्म

ले.-शिवनारायण उपाध्याय, शास्त्री नगर दादाबाड़ी, कोटा

रामायण विश्व का प्रथम महाकाव्य ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में नाना प्रकार के विषयों पर सूक्ष्म चिन्तन हुआ है। महर्षि बाल्मीकि इस ग्रन्थ के प्रणेता है। एक सामान्य सी घटना से प्रभावित होने पर उनके मुख से कुछ शब्द निकले और वह छन्द बन गया। कहानी इस प्रकार है-एक बार महर्षि बाल्मीकि तमसा नदी के तट पर आये और उसके स्वच्छ जल को देखकर उसमें स्नान करने को उद्यत हुए। पास ही एक पेड़ पर क्रौञ्च पक्षी का एक जोड़ा विचर रहा था। यह जोड़ा कभी भी एक दूसरे से अलग नहीं होता था, उनमें असीम प्रेम था। तभी एक शिकारी ने वहां आकर उस जोड़े में से नर पक्षी को बाण से मार डाला। वह खून से लथ-पथ होकर भूमि पर आ पड़ा। अपने पति की हत्या होते देखकर मादा क्रौञ्च चींख पड़ी। मरे हुए क्रौञ्च पक्षी को देखकर महर्षि वाल्मीकि को बड़ी दया आई और रोती हुई मादा क्रौञ्च की ओर देखकर वे बोल पड़े।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमागमः शाश्वतीः समाः।

यत् क्रौञ्च मिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्।।

निषाद तुझे नित्य निरन्तर कभी भी शांति न मिले, क्योंकि तूने इस क्रौञ्च के जोड़े में से, एक की, जो काम से मोहित था बिना किसी अपराध के ही हत्या कर डाली।

फिर गम्भीर सोच के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे की मेरे मुंह से अनायास जो शब्द निकला है वह तो चार-चरण का एक छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में आठ-आठ अक्षर है। इसे तो वीणा पर गाया भी जा सकता है फिर इन्होंने इसी छन्द में नारद जी द्वारा सुझायी गई रामायण लिखना तय किया और पूरा ग्रन्थ 24000 श्लोकों में लिख दिया। ग्रन्थ में मूल रूप से तो श्रीरामचन्द्र जी की जीवन-गाथा है परन्तु बीच-बीच में इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, राजनीति शास्त्र, आश्रम और वर्ण व्यवस्था आदि पर भी विचार किया गया है। इस लेख में हम राजनीति विज्ञान पर रामायण के आधार पर विचार करेंगे। वाल्मीकि रामायण में कई स्थानों पर शासक के कर्त्तव्यों और धर्म पर विचार किया गया है। वाल्मीकि रामायण में राजा को ईश्वर द्वारा नियत नहीं स्वीकार गया है, राजा को प्रजा चुनती है, परन्तु वास्तव में अधिकांश राजा वंश परम्परा से ही बनते हैं। इस लेख में हम राजा के कर्त्तव्य एवं धर्म के विषय में वाल्मीकिरामायण के आधार पर विचार करेंगे। वाल्मीकिरामायण में इस विषय पर बाल काण्ड सर्ग 7 अयोध्या काण्ड सर्ग 100, अरण्य काण्ड सर्ग 9 में विशेष वर्णन हुआ है। बाल काण्ड सर्ग 7 में राजा दशरथ के राज मंत्रियों के गुण और नीति का वर्णन हुआ है। राजा दशरथ के मंत्री मण्डल में 8 मंत्री थे। मंत्री लोग मंत्र के तत्व को जानने वाले थे। वे किसी भी व्यक्ति का चेहरा देखकर ही उसके भाव को जान लेते थे। मंत्रीगण सदैव राजा के प्रिय कार्यों और हित में लगे रहते थे। वैदिक ऋषियों में श्रेष्ठतम वसिष्ठ और वामदेव राजा के माननीय पुरोहित थे। अन्य मंत्री थे-सुयश, जाबालि, काश्यप, गौतम, दीर्घायु मार्कण्डेय और कात्यायन।

इन मंत्रियो के अतिरिक्त राजा के परम्परागत ऋत्विज भी मंत्री का कार्य करते थे। सभी ऋत्विज विद्वान् होने के साथ-साथ विनयशील, कार्य कुशल, जितेन्द्रिय, श्रीसम्पन्न, शास्त्र विद्या के ज्ञाता सुदृढ़ पराक्रमी, यशस्वी, राज कार्यों में सावधान, राजा की आज्ञा के अनुसार कार्य सम्पन्न करने वाले, तेजस्वी, क्षमाशील, तथा मुस्कुराकर बात करने वाले थे। अपने अथवा शत्रुपक्ष के राजाओं की कोई भी बात उनसे छिपी नहीं रहती थी। वे गुप्तचरों द्वारा यह जानते थे कि दूसरे राजा क्या करते हैं। क्या कर चुके हैं और आगे क्या करना चाहते हैं? वे सभी व्यवहार कुशल थे। कोष के संचय तथा सेना के प्रशिक्षण में सदा व्यस्त रहते थे। उनमें सदा शौर्य और उत्साह भरा रहता था। वे राजनीति के अनुसार कार्य करते तथा राज्य के अन्दर निवास करने वाले सत्पुरूषों की सदैव रक्षा करते थे। सन्धि और विग्रह के उपयोग और अवसर का उन्हें अच्छी तरह ज्ञान था। उनमें राजकीय मंत्रणा को गुप्त रखने की पूर्ण शक्ति थी। वे नीतिशास्त्र के विशेष ज्ञाता थे। वे सदा ही प्रिय लगने वाली वाणी बोलते थे। वे प्रजा का धैर्यपूर्वक पालन करते थे। प्रजा का पालन करते हुए वे अधर्म से सदैव दूर रहते थे। राज्य के मित्रों की संख्या बहुत थी तथा शत्रु का कहीं कोई अस्तित्व नहीं था। इस सर्ग में वस्तुतः राजा के मंत्रियों और ऋत्विजों के कर्त्तव्यों का वर्णन हुआ है साथ ही उनकी योग्यता के विषय में भी संक्षेप में बतलाया गया है।

फिर अयोध्या काण्ड 100 में श्रीराम ने कुशलक्षेम पूछते हुए ही राजनीति और राजा के कर्त्तव्य के विषय में विस्तृत वर्णन किया है। राजा को राज गुरू का सदैव सम्मान करना चाहिए। इस पर श्रीराम ने भरत से प्रश्न किया है कि क्या वे सदा धर्म में तत्पर रहने वाले विद्वान्, ब्रह्मवेत्ता, इक्ष्वाकु कुल के आचार्य वसिष्ठ का यथावत् सम्मान करते हैं? क्या वे राज परिवार में सभी को प्रसन्न और संतुष्ट रखते हैं।

क्या अग्निहोत्र के लिए ब्राह्मण ठीक समय पर आकर तुम्हें सूचित करते हैं कि अग्निहोत्र सम्पन्न हो गया है? क्या तुम विद्वानों, पितरों, भृत्यों, गुरूजनों, वृद्धों और वैद्यों का उचित सम्मान करते हो? क्या तुम अस्त्र-शस्त्र के ज्ञाता आचार्य सुधन्वा का समादर करते हो? क्या तुमने अपने ही समान शूरवीर, शास्त्रज्ञ, जितेन्द्रिय कुलीन तथा बाहरी चेष्टाओं से ही मन की बात जाने लेने वाले सुयोग्य व्यक्तियों को मंत्री बनाया है?

मंत्रों विजयमूलं हि राज्ञां भवति राघव।

सुसंवृतो मंत्रिधुरैर मात्यैः शास्त्र कोविदैः।। अयोध्या काण्ड 100.16

भरत! अच्छी मंत्रणा ही राजाओं की विजय का मूल कारण है। वह तभी सफल होती है जब नीतिशास्त्र निपुण मंत्रीशिरोमणि अमात्य उसे सर्वथा गुप्त रखें।

गुप्त मंत्रणा दो व्यक्तियों द्वारा ही गुप्त रहती है। दो से अधिक लोगों के साथ की गई गुप्त मंत्रणा गुप्त नहीं रहती है। अतः इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि गुप्त मंत्रणा फूट कर शत्रु के राज्य तक न फैल जाये।

कोई भी कार्य जिसका साधन बहुत छोटा और फल बहुत अधिक हो उसे शीघ्र प्रारम्भ कर देना चाहिए। उसमें विलम्ब नहीं करना चाहिए। कोई भी महत्वपूर्ण कार्य शत्रु को पूर्ण हो जाने पर ही विदित होना चाहिए। शासक को शत्रु पक्ष के विचारों का पता रहना चाहिए परन्तु अपने विचार को सदैव गुप्त ही बनायें रखना चाहिए। शासक को सौ मूर्खों के बदले एक पंडित को अपने साथ रखना चाहिए। विद्वान् अमात्य हजारों मूर्खों से अधिक मूल्यवान होता है।

एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दक्षो विचक्षण।

राजानं राज पुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम्।।

अयोध्या काण्ड 100.24

यदि एक मंत्री भी मेधावी, शूरवीर चतुर एवं नीतिज्ञ हो तो राजा या राजकुमार को बहुत बड़ी सम्पत्ति की प्राप्ति करा सकता है।

कर्मचारियों से उनकी योग्यता के अनुसार काम लिया जाना चाहिए।

कश्चिन्मुख्या महत्स्वेव मध्यमेषु च मध्यमाः।

जघन्याश्च जघन्येषु भृत्यास्ते तात योजितः।।

अयोध्या काण्ड 100.25

तुमने प्रधान व्यक्तियों को प्रधान, मध्यम श्रेणी के मनुष्यों को मध्यम और छोटी श्रेणी के लोगों को छोटे ही कामों में नियुक्त किया है न?

अमात्यानुपद्या तीतान् पितृ पैतामहाञ्चीन।

श्रेष्ठाञ्छ्रेष्ठेषु कच्चित् त्वं नियोजयसि कर्मसु।।

अयोध्या काण्ड 100.26

जो घूस न लेते हों अथवा निच्छल हों, वंश परम्परा से काम करते आ रहे हों तथा बाहर-भीतर से पवित्र तथा श्रेष्ठ हों ऐसे अमात्यों को ही तुम उत्तम कार्य में नियुक्त करते हो न?

तुम्हारे राज्य में प्रजा कठोर दण्ड से अत्यन्त उद्विग्न होकर तुम्हारे मंत्रियों का तिरस्कार तो नहीं करती है न?

कच्चिद् धृपृश्च शूरश्च धृतिमान् मतिमान्छुचिः।

कुलीनश्चानुरक्तश्च दक्षः सेनापतिः कृतः।।

अयोध्या काण्ड 100.30

क्या तुमने सदा संतुष्ट रहने वाले, शूरवीर, धैर्यवान्, बुद्धिमान् पवित्र, कुलीन एवं अपने में अनुराग रखने वाले, युद्ध विद्या विशारद पुरूष को ही सेनापति बनाया है न?

कच्चिद् बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम्।

सम्प्रात कालं दातव्यं ददासि न विलम्बसे।।

अयोध्या काण्ड 100.32

सैनिकों को देने के लिए नियत किया हुआ समुचित वेतन और भत्ता तुम समय पर देते हो न? देने में विलम्ब तो नहीं करते? अगले श्लोक में कहा गया है, 'यदि समय बिता कर भत्ता और वेतन दिये जाते हैं तो सैनिक अपने स्वामी पर भी कुपित हो जाते हैं और इस कारण बड़ा अनर्थ घटित हो जाता है।'

जिसे राजदूत नियत किया जाये वह अपने ही देश का निवासी, विद्वान् प्रतिभाशाली और जैसा उससे

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

21 जून अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस

महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन में यम-नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि योग के आठ अंग बताए है। क्रमशः एक-एक सीढ़ी चढ़ने से ही सिद्धि को प्राप्त किया जा सकता है। योग का मुख्य उद्देश्य चित्त की एकाग्रता द्वारा आत्मिक, मानसिक तथा बौद्धिक शक्तियों का विकास करना और आत्म साक्षात् द्वारा परम आत्मा तक पहुंचना है। किन्तु जो मन, बुद्धि तथा आत्मा का निवास स्थान है, जो भगवान् का साक्षात् मन्दिर है, वह हमारा शरीर यदि बलवान और स्वस्थ नहीं तो न ही हम अपनी शक्तियों का विकास कर सकते हैं, और न ही परम आत्मा परमेश्वर का दर्शन। वेद में भक्त भगवान से प्रार्थना करता है कि हे प्रभो! हम सुदृढ़ अंगों वाले तेरी स्तुति करने वाले हों। उपनिषदों में भी शारीरिक बल के बिना आत्म दर्शन को असम्भव बताया है-**नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः** अर्थात् यह आत्मा बलहीन कमजोर मनुष्य को प्राप्त नहीं होता। अतः योग जहां आत्मिक, मानसिक तथा बौद्धिक उन्नति का उपाय बताता है, वहाँ शारीरिक उन्नति का भी सर्वोत्तम तथा अचूक उपाय हमारे सामने रखता है।

मनुष्य जीवन का उद्देश्य अपने को सुखमय तथा शक्ति सम्पन्न बनाना है। इस उद्देश्य की पूर्ति भी तभी हो सकती है जबकि हमारे शरीर निरोग तथा सबल हों। जो शरीर सम्पूर्ण विद्याओं तथा शुभ गुणों का आधार है, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति का मूल कारण है, उस शरीर की सदा अजर अर्थात् युवावस्था और अमर अर्थात् चिरायु अवस्था से अधिक प्रिय वस्तु संसार में मनुष्यों के लिए और क्या होगी?

आज परमात्मा की इस अमूल्य देन की दयनीय दशा को देखकर बहुत दु:ख होता है। आज सभ्य संसार इस शरीर की अनेक प्रकार की आधि व्याधियों से पीड़ित हो रहा है। सम्भवतः कोई ऐसा सौभाग्यशाली पुरूष होगा कि जिसको किसी न किसी प्रकार की बीमारी ने न घेर रखा हो। इसलिए आज हमारे शरीरों में तथा मनों में न बल है, न उत्साह तथा पवित्रता है और न प्रसन्नता। जीवन की छोटी से छोटी घटनाएं तथा परिस्थितियां भी हमारे निर्बल तथा निस्तेज शरीर तथा मन को विक्षुब्ध तथा अशान्त बना देती हैं। हमारे स्वाभाविक आनन्द को भी नष्ट कर हमें शोक सागर में डुबा देती है। इन सब रोग और व्याधियों का मुख्य कारण हमारी शारीरिक तथा मानसिक निर्बलता और अस्वस्थता ही है और उसमें भी विशेषकर शारीरिक निर्बलता। जिस मनुष्य का शरीर स्वस्थ और बलवान नहीं, वह कभी भी मानसिक चिन्ताओं तथा शारीरिक व्याधियों से मुक्त नहीं हो सकता। उसके पास संसारिक सुख भोग की सामग्री होते हुए भी न तो वह उसे स्वेच्छापूर्वक भोग सकता है और न ही उसके द्वारा सुख और शान्ति को प्राप्त कर सकता है। उसे कोई न कोई मानसिक चिन्ता या शारीरिक बीमारी अवश्य घेरे रहती है। कमजोर शरीर वाले मन में न तो किसी भी कार्य को करने का उत्साह होता है और न ही उमंग। उसका जीवन स्वाभाविक शांति तथा आनन्द से शून्य, सदा नीरस और शुष्क ही बना रहता है। हमारे प्राचीन आचार्यों ने सुखी जीवन के जो लक्षण बताए हैं, आज हममें से शायद ही कोई सौभाग्यशाली होगा, जिसमें ये सारे के सारे लक्षण विद्यमान हों। महर्षि चरक अपने ग्रन्थ में सुखी जीवन के लक्षण बताते हुए लिखते हैं-

जिस मनुष्य को शारीरिक व मानसिक रोग नहीं सताते , जो विशेषकर यौवनावस्था में सब प्रकार के शारीरिक व मानसिक विकारों से रहित है, जिसका बल, वीर्य, यश, पौरूष और पराक्रम सामर्थ्य तथा इच्छा के अनुरूप है, जिसका शरीर नाना प्रकार की विद्याओं, कला कौशल आदि विज्ञान को प्राप्त करने में समर्थ है, जिसकी इन्द्रियां स्वस्थ, बलवान् और इन्द्रियजन्य भोगों को भोगने में समर्थ है, जिसके शरीर में किसी प्रकार की निर्बलता नहीं, उसका जीवन वास्तव में सुखी जीवन है। अतः जिसके शरीर में उपर्युक्त गुण विद्यमान नहीं हैं, वह कभी सुखी जीवन नहीं कहला सकता। ऐसे नीरस तथा उत्साहहीन जीवन से न तो इहलोक ही सुधर सकता है और न ही परलोक। अतः इस लोक और परलोक को शांत तथा सुखमय बनाने का यदि कोई मुख्य साधन है तो वह है शारीरिक आरोग्यता। इसीलिए शरीर शास्त्र के आचार्यों ने कहा है कि धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष जो मानव जीवनरूपी कल्पवृक्ष के चार मधुर फल हैं, उनका यदि कोई श्रेष्ठ तथा मुख्य साधन है तो वह शारीरिक आरोग्यता ही है, क्योंकि यदि हमारा शरीर स्वस्थ और बलवान है तो हम अपने पुरूषार्थ से धन भी कमा सकते हैं, उस धन द्वारा संसारिक सुखों का उपभोग भी कर सकते हैं और परोपकार देश, जाति तथा धर्म की सेवा तथा आत्मचिन्तन और प्रभुभक्ति आदि शुभ कार्य भी कर सकते हैं। इसीलिए महापुरूषों ने कहा है कि अपने जीवन को धार्मिक तथा सुखमय बनाने का सबसे प्रथम और मुख्य साधन स्वस्थ तथा बलवान् शरीर ही है। इसीलिए हमारे आचार्यों ने शरीर स्वास्थ्य पर बहुत बल दिया है।

महर्षि चरक तो यहाँ तक लिखते हैं कि-मनुष्य को अन्य सब काम छोड़कर पहले अपने शरीर की सम्भाल करनी चाहिए क्योंकि अन्य सब धन, सम्पत्ति आदि पदार्थों तथा सुख साधनों के होने पर भी शरीर स्वास्थ्य के बिना वह सब नहीं के समान हैं। इसलिए वेद में मनुष्य को आदेश दिया है कि हे मनुष्य! तू अपने शरीररूपी क्षेत्र में रोग रहित होकर रह। संसार में जितने भी महापुरूष हुए हैं, उन्होंने भी शारीरिक बल पर विशेष जोर दिया है। आधुनिक युग के महापुरूष महर्षि दयानन्द युवकों को शरीरिक उन्नति का उपदेश देते हुए कहते हैं- बलवान मनुष्य सदा सुखी और प्रसन्न रहता है। निर्बल मनुष्य का जीवन सार रहित, रोगों का घर बना रहता है। अतः अपने शरीर को बलवान् बनाने के लिए खान-पान के समान व्यायाम भी अवश्य करना चाहिए।

हर वर्ष 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया जाता है। योग को विश्व में एक नई पहचान मिल रही है। परन्तु योग कोई एक दिन विशेष की वस्तु नहीं है। योग हमारी प्रतिदिन की जीवनचर्या का हिस्सा है। जैसे हम प्रतिदिन भोजन करते है, खाते हैं, पीते हैं। उसी प्रकार योग भी नियमित किया जाने वाला व्यायाम हैं। अगर हम अपने जीवन को तनावमुक्त बनाना चाहते हैं तो हमें योग को अपने जीवन की दिनचर्या में शामिल करना होगा। योग हमारे प्राचीन ऋषि- मुनियों के द्वारा प्रदत्त स्वस्थ और निरोग जीवन जीने की पद्धति है। योग साधना के द्वारा, प्राणायाम के द्वारा हमारे ऋषि दीर्घायु को प्राप्त करते थे। योग करने से मानसिक तनाव कम होगा, शरीर निरोग होगा तथा मन में एक नई ऊर्जा का संचार होगा। इसीलिए हम सभी अगर स्वस्थ, मानसिक तनाव से रहित, निरोग और दीर्घायु जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो हमें ऋषियों की पद्धति को अपनाना पड़ेगा। योग की पद्धति को अपनाकर ही एक स्वस्थ और सुन्दर राष्ट्र का निर्माण हो सकता है।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

महर्षि दयानन्द की दृष्टि में अहिंसा किसके लिए कितनी व्यवहार्य?

ले.-पं. वेद प्रकाश शास्त्री, फाजिल्का

अहिंसा का अर्थ

वैदिक धर्म में अहिंसा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। वेद, वैदिक, लौकिक तथा परवर्ती सभी ग्रन्थों में अहिंसा की महत्ता का वर्णन किया गया है।

व्याकरण के अनुसार अहिंसा का अर्थ

अहिंसा का अर्थ है-अ + हिंसा = हिंसा का अभाव। हिंसा शब्द 'हिसि हिंसायाम्' (पाणिनीय धातुपाठः -10. 256) धातु से नुम् (अष्टाध्यायी-7. 1.58) अ+टाप् (अष्टा. 1.4) प्रत्यय होकर सिद्ध होता है। न हिंसा = नञ् तत्पुरुष समास होकर अहिंसा शब्द बनता है।

शब्दकोष के अनुसार अहिंसा का अर्थ

1. धातु-हिंस्-रुधादि, चुरादिगण। आघात करना, ताड़ना करना, चोटिल करना, घायल करना, हानि करना, पीड़ित करना, वध करना। रु.-हिनस्ति। चु.-हिंसयति। हिंसा-हिंस् अ+ टाप्। हत्या, वध, हानि पहुंचाना, अनिष्ट करना, चोरी आदि करना, द्वेष, ईर्ष्या।

शब्दार्थ कौस्तुभ पृ. 1330

अहिंसा-किसी प्राणी को न मारना। मन, वचन, कर्म से किसी प्राणी को पीड़ा न देना। अर्थात् हिंसा का न होना ही अहिंसा है।

शब्दार्थ कौस्तुभ पृ. 170

2. अहिंसा-किसी को दुःख न देना, किसी जीव को न सताना या न मारना।

भाषा शब्दकोष पृ. 180

हिंसा-जीवों का वध करना, मार डालना, सताना, कष्ट या दुःख देना, पीड़ा पहुंचाना, बुराई करना या चाहना, शरीर और प्राणों का वियोग करना ही हिंसा है।

भाषा शब्दकोष पृ. 1674

3. अहिंसा-किसी को दुःख न देना। मन, वचन, कर्म से किसी प्राणी को पीड़ा न पहुंचाना, शास्त्रों के नियम विरुद्ध किसी की हिंसा न करना।

नालन्दा विशाल शब्द सागर पृ. 172

हिंसा-प्राणियों को मारने-काटने और शारीरिक कष्ट देने की वृत्ति, किसी को हानि पहुंचाना।

नालन्दा विशाल शब्द सागर पृ. 1540

कोषकारों के अनुसार अहिंसा का सारार्थ

किसी भी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट न देना। मन, वचन, कर्म से किसी प्राणी को पीड़ा न पहुंचाना, हत्या या वध न करना, ईर्ष्या-द्वेष, वैरभाव न रखना, किसी जीव को न सताना, अनिष्ट न करना ही अहिंसा है।

आचार्य उदयवीर शास्त्री योगदर्शन भाष्य में अहिंसा की व्याख्या करते हुए लिखते हैं-

किसी के प्रति द्रोह, ईर्ष्या, असूया आदि का उभरना भी हिंसा है। अतः इनका परित्याग ही अहिंसा है। पृ. 135

महर्षि पतञ्जलि योग दर्शन में योग के आठ अंगों में से प्रथम अंग 'यम' के बारे में कहते हैं-

तत्राहिंसा सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।।

योग. 1/2/30

यहां पर यमों की परिगणना में 'अहिंसा' को सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। जिस व्यक्ति की योग के प्रति रुचि है उसे योग की पहिली सीढ़ी 'अहिंसा' पर अपना कदम रखना होगा।

महर्षि व्यास ने इसका भाष्य करते हुए अहिंसा का लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

सर्वथा सर्वदा सर्वभूताना-मनभिद्रोहः।।

किसी भी प्राणी से वैरभाव न रखना ही अहिंसा है।

जब किसी से वैरभाव करना ही बुरा कहा गया है तो मन, वाणी और कर्म अर्थात् शरीर से अनिष्ट चिन्तन करना, सताना, दुःखी करना, हत्या करना तो बहुत ही बुरा है।

अतः सब प्रकार (मनसा, वाचा, कर्मणा) से सब कालों में सब प्राणियों के प्रति पीड़ा देने की भावना का परित्याग करना अथवा वैरभाव न रखना ही 'अहिंसा' है।

महर्षि दयानन्द कहते हैं-

"सब प्रकार से, सब काल में, सब प्राणियों के साथ वैर छोड़ के प्रेम-प्रीति से वर्तना।"

ऋ.भा.भू. पृष्ठ-200

तत्राहिंसा...।

योग. 1/2/30

महर्षि ने इस सूत्र की व्याख्या में 'अहिंसा' का अर्थ 'वैरत्याग' किया है।

स. प्र. समु. 3 पृ. 45

अहिंसैव भूतानां कार्य श्रेयोऽनुशासनम्।।

मनु. 2/159

यहां पर अहिंसा का अर्थ-वैरबुद्धि छोड़ के, निर्वैरता से किया गया है।

स.प्र.समु.3, पृ.47, समु.10 पृ. 217

प्राणियों का कल्याण करने की कामना से वैरबुद्धि छोड़ के अनुशासन अर्थात् उपदेश करना श्रेयस्कर है।

दूसरे शब्दों में अहिंसा का अर्थ है-निर्वैरता अर्थात् वैरभाव को छोड़ कर सबसे प्रेम करना, कल्याण की कामना करना-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।

हे ईश! सब सुखी हों, कोई न हो दुखारी।

सब हों निरोग भगवन्, धन-धान्य के भंडारी।।

सब भद्रभाव देखें, सन्मार्ग के पथिक हों।

दुखिया न कोई होवे, सृष्टि में प्राणधारी।।

हे ईश! सब सुखी हों, कोई न हो दुखारी।।

अतः हम सभी यही कामना करते हैं-

1. विश्व का, कल्याण हो।
2. प्राणियों में, सद्भावना हो।

महर्षि पतञ्जलि कहते हैं-

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।। योग. 1/2/35

महर्षि दयानन्द ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है-

"जब अहिंसा धर्मनिश्चय (व्यवहार में दृढ़) हो जाता है तब उस पुरुष के मन से वैरभाव छूट जाता है। किन्तु उसके सामने वा उसके संग से अन्य पुरुष का भी वैरभाव छूट जाता है।"

ऋ.भा.भू., उपासनाविषय, पृ. 203

आचरित अहिंसा का दृष्टान्त

महर्षि दयानन्द-दृष्टान्त रूप में महर्षि दयानन्द के जीवन की ही घटना देखिए-

गंगामन्दिर के पुजारियों को लोग गंगापुत्र कहते हैं। एक गंगापुत्र स्वामी जी के समीप रहता था। उसका नित्य प्रति का काम था-स्वामी जी से थोड़ी दूर खड़े होकर गालियां देना। ऐसा बीसों दिन चलता रहा परन्तु महाराज ने उसे कभी कुछ नहीं कहा।

श्री स्वामी जी के पास अनेक भक्त आया करते थे। उनमें से कोई लड्डू लाता तो दूसरा पेड़े चढ़ा जाता। कोई बादाम, मिश्री आदि भोज्य पदार्थ अर्पण कर जाता। स्वामी जी महाराज प्रसाद को अपने भक्तों में बांट दिया करते थे।

एक दिन सायंकाल कुछ लड्डू पेड़े बच गए। महाराज सोच ही रहे थे कि ये पदार्थ किसे दें? इतने में उनकी दृष्टि उस अपशब्द बोलने वाले गंगापुत्र पर पड़ी। उसे आदरपूर्वक बुला कर वे सकल पदार्थ दे दिए और कहा-"सायंकाल हमारे पास आया करो। हम तुम्हें खाद्य वस्तुएं दिया करेंगे।"

छः सात दिन तक वह गंगापुत्र स्वामी जी से मोदक पाता रहा परन्तु महाराज ने उससे गालियों की कोई बात नहीं की। उसके मन में पश्चाताप होने लगा। अन्त में वह स्वामी जी के चरणों में गिर पड़ा और आंसू भर कर कहने लगा-"भगवान्! यदि मेरी कठोरता का कोई पार नहीं तो आपकी सहनशक्ति भी असीम है। मेरे पाप क्षमा करें।"

महाराज ने आशीर्वाद देकर कहा-"हमने आपके वचनों को स्मृति में स्थान ही नहीं दिया है। आप भी अब उन बातों को स्मरण न कीजिए।

इससे विदित होता है कि महर्षि दयानन्द मनु महाराज की कसौटी पर पूर्णतः खरे उतरते हैं-

क्रुद्धयन्तं न प्रतिक्रुद्धयेदाक्रुष्टः कुशलं वदेत्।। मनु. 6/48

जब कहीं उपदेश वा संवादादि में कोई संन्यासी पर क्रोध करे अथवा निन्दा करे तो संन्यासी को उचित है कि उस पर क्रोध न करे। अपितु सदा उसके कल्याण का उपदेश करे।

ऐसा ही उन्होंने गंगापुत्र से स्नेहयुक्त मधुरवाणी का व्यवहार किया जिससे उसका व्यवहार बदल गया। महर्षि ने विषदाता रसोईये जगन्नाथ को क्षमा करते हुए कुछ रुपये देकर बाहर भेज दिया था।

यह अहिंसा का जीता जागता उदाहरण है।

अहिंसा का निष्कर्ष

गहन विचार करने पर यही ज्ञात होता है कि-

अहिंसा परमो धर्म- तथाऽहिंसा परमो दमः।

अहिंसा परमं दानं अहिंसा परमं तपः।।

महा. सभा, अनु. पर्व 116/20

अहिंसा ही परम धर्म है, अहिंसा ही परम संयम है, अहिंसा ही परम दान है, अहिंसा ही परम तप है।

भीष्म पितामह कहते हैं-

अहिंसा सकलो धर्मः हिंसा-अधर्मः तथाहितः।। महा. शान्ति. 272/20

अहिंसा ही सम्पूर्ण धर्म है। हिंसा अधर्म है और अधर्म अहितकारी है।

(क्रमशः)

प्रेरणा पुंज: दयानंद

ले.-हरि किशोर 1010, Sector 46/B चण्डीगढ़

अपना देश आर्यावर्त्त से भारत की स्वर्णिम यात्रा पूरी कर इंडिया या हिन्दुस्तान की कठिन डगर पर असहाय खड़ा था। आर्यों को मुसलमानों और अंग्रेजों ने पूरी तरह हीन भावनाग्रस्त करके हिन्दू बनाकर रखा था। अंग्रेजों के काले कारनामे और छोटे देशी राजाओं की खण्ड-खण्ड सोच ने राष्ट्रीय चेतना के अभाव में राष्ट्र को निर्जीव कर दिया था। ऐसे अंधकारपूर्ण युग में सन् 1824 ई. में गुजरात राज्य के टंकारा नामक गाँव में शैव मतानुयायी सामवेदी औदीच्य ब्राह्मण श्री कर्शन जी तिवारी और अमृतबाई के घर मूल नक्षत्र में एक पुत्र का जन्म हुआ। मोरवी रियासत में उच्च पदस्थ धन-धान्य संपन्न श्री कर्शन जी अपने पुत्र का नाम मूलशंकर रखते हैं। बचपन में जो घटना महाशिवरात्रि पर्व पर घटी वह जीवन रूपांतरित करने वाली सिद्ध हुई। यही घटना मूलशंकर को स्वामी दयानंद बनने और जीवन के अंतिम क्षण तक वेद पथ पर चलने के लिए पर्याप्त ऊर्जा देती रही।

विश्व में जिन महापुरुषों ने इस धरा को धन्य किया, उनमें स्वामी दयानंद सरस्वती का स्थान बहुत ऊंचा है। सामान्यतया लोग उन्हें समाज सुधारक के रूप में ही याद करते है, जबकि वास्तविकता यह है कि उनका व्यक्तित्व बहु-आयामी था। उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में जागृति उत्पन्न करने का प्रयास किया। उस युग में स्वतन्त्रता, स्वराज्य और जनतांत्रिक व्यवस्था की बात करने वाले तो वे सर्वप्रथम और एकमात्र महापुरुष थे। इसी कारण महात्मा गांधी ने निम्नलिखित शब्दों में उनका योगदान स्वीकार किया- ''जनता से संपर्क, सत्य-अहिंसा, जन-जागरण, लोकतंत्र, स्वदेशी प्रचार, हिंदी, गोरक्षा, स्त्री उद्धार, शराब बंदी, ब्रह्मचर्य, पंचायत, सदाचार, देश उत्थान के जिस-जिस रचनात्मक क्षेत्र में मैंने कदम बढ़ाए वहां दयानंद के पहले से ही आगे बढ़े कदमों ने मेरा मार्गदर्शन किया।'' सत्य को सत्य कहना और असत्य को असत्य कहना महापुरुषों का चरित्र होता हैं। स्वामी जी का उद्देश्य मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाना (मनुर्भव) था इसलिए उन्होंने धर्म के नाम पर प्रचलित पाखंड, आडम्बर, अत्याचार, शत्रुता, मार-काट को रोकने का साहसिक कार्य किया।

स्वामी दयानंद आधुनिक युग के प्रकांड विद्वान तथा महान ऋषि थे। वेदों का हिंदी में भाष्य करने का महान श्रेय स्वामी जी को जाता है। महर्षि दयानंद का समस्त चिंतन राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत रहा। स्वयं गुजराती होते हुए भी उन्होंने हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में देखा। भारतीय नवजागरण के आन्दोलन में स्वामी दयानंद की भूमिका महत्वपूर्ण रही। ऋषि दयानंद ने प्राचीन, किन्तु जो हिंदी भाषा में नहीं थे, ऐसे शब्दों का प्रचलन किया। जैसे आर्यभाषा, आर्य, आर्यावर्त तथा नमस्ते। सर्व प्रथम स्वामी जी ने ही नमस्ते शब्दरत्न भारतीय समाज को दिया जो आज भारत का राष्ट्रीय अभिवादन बन चुका है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी रचना 'भारत भारती में तो ऋषि दयानंद के सभी सुधारों का प्रबल समर्थन किया है। द्विवेदी युग, भारतेंदु युग और छायावादी युग के हिंदी साहित्य में दयानंद की सुधारवादी भावना का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। साहित्यकारों में आदर्शवाद की भावना भरने का श्रेय स्वामी जी को ही जाता है। यहाँ तक कि श्रृंगार रस के कवि भी नारी के सौन्दर्य का वर्णन बहुत ही गरिमामय तरीके से करते थे।

वे महान समाज सुधारक, राष्ट्रवादी और प्रगतिशील चिन्तक होने के साथ-साथ अपने समय के श्रेष्ठ साहित्यकार थे। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उन्होंने विशाल साहित्य का सृजन किया। उनका गद्य संस्कृतमय है जिसमें, ओज, हास्य एवं व्यंग पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। उनका मानना था 'हितेन सह सहितं, तस्य भाव: साहित्यं' अर्थात् साहित्य के भीतर हित की भावना प्रबल होती है। महर्षि दयानंद का समस्त चिंतन राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत रहा। वे वेद शास्त्रों के गंभीर विद्वान, महान सुधारक, प्रमुख साहित्यकार, राष्ट्रवादी तथा प्रगतिशील चिन्तक थे। उन्होंने हिंदी को फारसी सहित विदेशी भाषाओं के प्रभाव से मुक्त कर संस्कृत से जोड़ दिया। इससे हिंदी सशक्त एवं नए शब्दों की जननी बन सकी। हिंदी के स्वरूप को साहित्यिक स्तर और स्थिरता प्रदान करना स्वामी जी का अदभुत कार्य था।

हिंदी साहित्य को समृद्धि प्रदान करने वाले दयानंद के साथ पल-पल पर धोखा हुआ है। साहित्य के भीतर हित की भावना प्रबल होती है ऐसा कहने वाले साहित्यकार और हिंदी साहित्य के इतिहास के लेखक दोनों ने दयानंद के साहित्य को साहित्य ही नहीं माना। हिंदी के रीतिकालीन साहित्य को जो कि राजाओं के भोग-विलास, काम तृप्ति और केवल मनोरंजन के लिए लिखा गया, सबका हित न करते हुए भी साहित्यकारों की दृष्टि में प्रमुख साहित्य माना जाता है। वहीं प्राणिमात्र का हित करने वाले दयानंद के साहित्य को जान-बूझकर छोड़ दिया गया। गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं। जहाँ केवल मनोरंजन से पूर्ण लेखन को साहित्य की श्रेणी मिल गयी, वहीं दयानंद का विचारपूर्ण और उद्देश्यपूर्ण लेखन तथा कथित विद्वानों के षडयंत्रों का शिकार हो गया। किसी ने सत्यार्थ प्रकाश के 11वें समुल्लास से गोदान (जाट जी-पोजी वार्ता) लेकर उसे विस्तार देकर अपने नाम से उपन्यास के रूप में प्रकाशित करवा दिया तो किसी ने व्यवहारभानु से अंधेर नगरी चौपट राजा लेकर नाटक लेखन के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। कई तो स्वामी जी प्रदत्त स्वराज्य शब्द को अपने नाम से प्रसारित करके बहुत बड़े स्वतन्त्रता सेनानी ही बन गये। वेद और संस्कृत न जानते हुए भी एक संन्यासी तो दयानंद जैसी वेश-भूषा धारण करने के कारण ही धर्म और भारतीय संस्कृति का असली उत्तराधिकारी बन बैठा। अत: कह सकते हैं कि स्वामी जी पारस पत्थर थे जो भी उनके या उनकी विचारधारा के संपर्क में आया, सोना बन गया। हिंदी साहित्य में विद्वानों ने अनेक विधाओं को शामिल किया है जैसे-कविता, कहानी उपन्यास नाटक संस्मरण, डायरी लेखन आदि। स्वामी जी के शास्त्रार्थ सत्य का निर्धारण करने सबका हित करने और मनोरंजन से ऊपर उठकर जागरूकता फैलाने का काम करते हैं। प्रश्न यह उठता है कि जब 'डायरी लेखन' जैसी छोटी विधा को विद्वानों ने साहित्य का अंग मान लिया तो शास्त्रार्थ स्वयं में एक पूर्ण विधा होते हुए भी अस्वीकृत क्यों? सद्गुरुशरण अवस्थी की दृष्टि में दयानंद एक श्रेष्ठ साहित्यकार हैं उनके अनुसार-

सामाजिक, दार्शनिक तथा राजनैतिक विषयों पर सबसे पहले स्वामी जी की लेखनी खुली।

भारतीय इतिहास में 19वीं शताब्दी का समय पुनर्जागरण का काल माना जाता है। दयानंद इसी काल के ऐसे महापुरुष हैं जिन्होंने धर्म, समाज, संस्कृति तथा राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में नवचेतना का संचार किया। नवजागरण काल का नेतृत्व उन्होंने भारतीय तत्व चिंतन तथा वैदिक दर्शन के आधार पर किया। एक भाशा, एक धर्म और एक राष्ट्र के लिए दयानंद ने अथक परिश्रम किया था। भारत में राष्ट्रीयता का उदय दो शब्दों से संभव हो सका। एक बंकिम चन्द्र चटर्जी का 'वन्दे मातरम्' दूसरा स्वामी दयानंद का स्वराज्य। आज की राजनैतिक स्वतंत्रता इन्हीं शब्दों के कारण मिली है।

स्वामी जी ने अपने समय में एकता स्थापित करने के लिए तीन ऐसे कार्य किये जिन्हें इतिहास में उचित स्थान न मिल सका। प्रथम, हरिद्वार कुम्भ मेले में संन्यासियों के मध्य वेदों पर आधारित धार्मिक विचार रखे। परन्तु संन्यासीगण अपने स्वार्थों, अखाड़ों की परम्पराओं और व्यवहारों के कारण स्वामी जी के विचारों से सहमत न हो सके। दूसरा शास्त्रार्थ द्वारा सत्य और असत्य का निर्णय कर विद्वानों को संगठित करना। ताकि सत्य को ग्रहण और असत्य को त्यागा जा सके। परन्तु विद्वानों का अहंकार और रोजी-रोटी का लालच इस प्रयास में बाधा बना। तीसरा सन 1877 ई. में हुए दिल्ली दरबार के समय समाज सुधारकों (सर सय्यद अहमद खां, केशव चन्द्र सेन आदि) को आमंत्रित कर सर्वसम्मत कार्यक्रम बनाकर समाज सुधार किया जाए ऐसा प्रयास। परन्तु समाज सुधारक कोई सर्व सम्मत कार्यक्रम न बना सके।

(क्रमश:)

जीवन की उत्तमता के लिए देवयज्ञ से प्रेरणा

ले.-कमलेशकुमार, शास्त्री सोसाइटी, नवावाडज रोड, अहमदाबाद

मानव को ईश्वर ने अनेक वरदान दिये हैं। अनेक पदार्थ दिये हैं। अनेक प्रकार के सुख-सुविधा के साधन दिये हैं। इन में सर्वप्रथम स्थान है जीवन का। ईश्वर ने मानव को सर्वप्रथम जो वस्तु दी है, वह जीवन है। इस जीवन के कारण ही तो मानवीय शरीर है, इसी जीवन के कारण तो माता-पिता गुरुजन हैं। इसी जीवन के कारण सुख तथा सुख प्राप्ति के साधन है। यदि ईश्वर की ओर से जीवन का उपहार न मिला होता, तो आज ये सारी वस्तुएँ हमारे पास कहाँ हो सकती थी। अत: ईश्वर के द्वारा प्रदत्त वस्तुओं में प्रथम स्थान जीवन का है।

ईश्वर के द्वारा जो जीवनरूपी सर्वप्रथम उपहार प्राप्त हुआ है, उसे हमें श्रेष्ठ बनाना चाहिये। यह हमारा कर्तव्य भी होना चाहिये तथा लक्ष्य भी होना चाहिये। जीवन को उत्तम बनाने के कर्तव्य को निभाने के लिये तथा जीवन को उत्तम बनाने रूप लक्ष्य को पाने के लिये जहाँ अनेक पदार्थ तथा पुरुष सहयोगी बनते हैं, वहाँ आज्ञा तथा प्रेरणा ये दो तत्व भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। आज्ञा तथा प्रेरणा के सहयोग से मानव अपने जीवन को उत्तम बना सकता है।

आज्ञा की प्राप्ति हमें चेतन पदार्थों से होती है। हमारे अपने सभी पूर्वज चेतन रहे हैं, इस कारण उनके द्वारा समय समय पर हमें आज्ञाएँ मिलती रहीं हैं, तथा वर्तमान में भी मिल रही हैं। माता-पिता, गुरुजन इत्यादि चेतन हैं, अत: वे हमें आज्ञा देते हैं। इनके द्वारा प्राप्त आज्ञाओं का पालन करके हम अपने जीवन को उत्तम बनाने में समर्थ हो सकते हैं। अत: हमें अपने पूर्वजों से आज्ञा प्राप्त होती रहे, ऐसी व्यवस्था जुटाते रहना चाहिये।

प्रेरणा हमें चेतन तथा अचेतन-दोनों प्रकार के पदार्थों से मिल सकती है। संसार के कई पदार्थ जो अचेतन या जड़ हैं, वह भी प्रेरणा दे कर हमारे जीवन को उत्तम बनाने का पथ प्रदर्शित करते हैं। उनसे प्रेरणा लेकर मानव अपने जीवन को उत्तम बना सकता है। हम यहाँ पर विशेष रूप से यज्ञ-हवन की क्रिया तथा उस क्रिया में उपयुक्त पदार्थों से मानव जीवन को उत्तम बनाने की किस प्रकार से कैसे प्रेरणा प्राप्त होती है, उसका विचार करेंगे।

1. यज्ञ की अग्नि से प्रेरणा

सामान्य रूप से अग्नि उष्णता अथवा ताप पाने के लिये उपयोग में लाई जाती है। रसोई घर में खाना पकाने के लिये हम अग्नि की स्थापना करते हैं। यह अग्नि तपता तपाता रहे, इस के लिये हम प्रयत्नशील रहते हैं। मात्र खाना पकाने का कार्य करते हुए हमारे समक्ष जो अग्नि है, वह अपनी तरह हमें भी ताप प्रदान करते रहने की प्रेरणा देती है। मानव यदि चाहे, तो वह रसोईघर के इस अग्नि से प्रेरणा ले सकता है। यह प्रेरणा होगी-उष्णता देते रहने की। पर, इससे ज्यादा कुछ नहीं।

फिर अंधेरे को दूर करने के उद्देश्य से मानव दीपक प्रज्वलित करता है। इस दीपक की अग्नि से हम उष्णता की कामना नहीं रखते, हम तो इस दीपक के अग्नि से प्रकाश फैलाने की चाहना करते हैं। यदि इस दीपकस्थ अग्नि से हम प्रेरणा लें, तो वह हमें प्रेरित करेगा कि हम भी प्रकाश फैला कर अंधेरे में उजाला करें। पर, इससे ज्यादा कुछ नहीं।

आगे चल कर हम अगरबत्ती में अग्नि को देखते हैं। अगरबत्ती में उपस्थित अग्नि से हम सुगन्ध फैलाने की कामना कर सकते हैं। और इसे देख कर प्रेरणा ले सकते हैं, कि हम भी इसी तरह से सुगन्ध फैलाते रहें। बस, इसके अतिरिक्त ओर कुछ प्रेरणा नहीं ले सकते।

परन्तु इधर हवन कुण्ड में उपस्थित अग्नि के देखें। वह हवन कुण्ड में स्थित एक साथ तीन कार्य करती है। सुगन्ध देती है, प्रकाश देती है तथा उष्मा प्रदान करती है। हवन कुण्ड की इस अग्नि को देखकर हम प्रेरणा ले सकते हैं, कि हम जो भी कोई कार्य करें, उस कार्य से एक साथ सुगन्ध मिलनी चाहिये, प्रकाश मिलना चाहिये तथा उष्मा की प्राप्ति होनी चाहिये।

सुगन्ध हमारे यश का प्रतीक है, प्रकाश हमारे अंदर प्रकट होने वाले ज्ञान का प्रतीक है तथा उष्मा (जो कि शरीर में परिश्रम के कारण उत्पन्न होती है) अन्यों की सेवा करने रूप का प्रतीक है। इस प्रकार हवन कुण्ड में उपस्थित अग्नि हमें प्रेरणा देती है कि हमारे प्रत्येक कार्य से एक साथ तीन परिणाम प्राप्त हों। वस्तुत: कोई भी कार्य यदि एक साथ सुगन्ध देता है प्रकाश देता है तता उष्मा प्रदान करता है, तो वह यज्ञकार्य बन जाता है। एक प्रबुद्ध मनुष्य के रूप में हम जो भी कार्य करें, उस कार्य से हमें यश प्राप्त होना चाहिये। यदि मात्र उस कार्य से यश ही प्राप्त हुआ, प्रकाश की प्राप्ति नहीं हुई तो समझना चाहिये कि वह हमारा कार्य यज्ञरूप नहीं है। इसी परम्परा में प्रत्येक कार्य से उष्मा की प्राप्ति होना आवश्यक है। अर्थात् उस कार्य से हमारे शरीर में उष्मा उत्पन्न हो। उष्मा शरीर को सक्रियता प्रदान करती है। यदि उस कार्य को हम सेवा के रूप में नहीं देखेंगे, तो वह कार्य हमारे शरीर में उष्मा नहीं, परन्तु ताप को उत्पन्न करेगा।

इस प्रकार से हवन कुण्ड में स्थापित किया गया अग्नि देव अचेतन होते हुए भी हमें प्रेरणा देता है कि मनुष्यों तुम मेरी तरह एक कर्म करते हुए एक साथ त्रिविध परिणामों का वितरण करो। मनुष्य यदि अग्नि देवता से यह प्रेरणा लेकर, इस प्रेरणा के अनुरूप जीवन जीने का उपक्रम प्रारंभ कर देता है, तो समझो उस के प्रत्येक कार्य यज्ञकर्म बन जायेंगे। किसी भी कर्म से जब एक साथ ज्ञान, यश तथा उष्मा की प्राप्ति होती है, तो वह कर्म यज्ञकर्म बन जाता है।

2. समिधा से प्रेरणा

यज्ञकर्म में अग्नि जिस पर स्थापित की जाती है, वह काष्ठ है। यज्ञ के संदर्भ में इसे समिधा कहा जाता है। इस काष्ठ (समिधा) का जीवन जब बाह्यजगत् में बीतता है, तब उसके त्रिविध रूप होते हैं। काष्ठ का एक प्रकार का जीवन जहाँ उसका जन्म होता है, वहीं तक सीमित रहते हुए व्यतीत होता है। अर्थात् वह किसी वृक्ष पर जन्म लेता है, ओर वहीं पर सूख कर अपना जीवन समाप्त करता है। कालान्तर वह नीचे गिर जाता है और पुन: मिट्टी बन जाता है। समिधा का एक प्रकार का जीवन ऐसा है।

समिधा का दूसरा जीवन मानवीय भोगों के लिये व्यतीत होता है। कोई व्यक्ति वृक्ष से डाली काट कर ले जाता है। उस डाली के काष्ठ से घर-गृहस्थी के उपयोग में आने वाला कोई साधन बनाता है। जैसे कि किसी ने काष्ठ से दही मथने के लिये मथनी बना ली। यह मथनी दही को मथने का काम में मनुष्य को उपयोगी बन जाती है। कोई मनुष्य कभी कभी इस काष्ठ से कोई साधन नहीं बनाता, अपितु उसे चूल्हे का ईन्धन बना कर उपयोग में लाता है। मानो अग्नि जलाने का साधन बना डालता है। इस अवस्था में काष्ठ का जीवन किसी व्यक्ति विशेष के उपयोग में व्यतीत होता है। बस, इस प्रकार से एक व्यक्ति या परिवार आदि के किसी कार्य में सहयोगी बनती हुआ यह काष्ठ अपना जीवन व्यतीत करता है। काष्ठ का यह द्वितीय जीवन उपर्युक्त प्रथम जीवन से कुछ अच्छा ही है।

काष्ठ का तीसरा जीवन यज्ञकुण्ड के अंदर व्यतीत होता है। कोई व्यक्ति वृक्ष से डाली काट लाता है, और उसके ठीक प्रकार से खण्ड करके यज्ञकार्य में उपयोगी बनाने के लिये समिधा का रूप दे देता है। यह समिधा हवनकुण्ड में जाती है, और उसमें उसका जीवन व्यतीत होता है। समिधा का यह तीसरे प्रकार का जीवन है।

हवनकुण्ड में रह कर समिधा अपना जो जीवन व्यतीत करती है, उसे हम पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध के रूप में दो भाग में विभाजित कर सकते हैं। समिधा का यह दो भाग में विभाजित जीवन हमें अपने जीवन को भी दो भाग में विभाजित करके जीने की प्रेरणा देता है। इस बात को थोड़ी और अधिक स्पष्टता से विचारते हैं।

हवनकुण्ड में जाकर समिधा सर्वप्रथम तो स्वयं अग्नि का रूप ले लेती है। अपने की अग्नि रूप बनाने में उसके जीवन का पूर्वार्ध समाप्त हो जाता है। जब वह स्वयं अग्निरूप बन जाती है, तब उसके जीवन का उत्तरार्ध प्रारंभ होता है। इस उत्तरार्ध में अब अग्निरूप बनी हुई समिधा अपने संपर्क में आने वाली घृत, सामग्री, स्विष्टकृत पदार्थ तथा हवनकुण्ड में आने वाली नई नई समिधाओं को अपने जैसा अर्थात् अग्निरूप बनाने में व्यतीत करती है। तात्पर्य यह है कि यज्ञकुण्ड में पहुँची हुई समिधा अपने जीवन के पूर्वार्ध में स्वयं अग्नि का रूप लेने में व्यतीत करती है और जब वह स्वयं अग्निरूप बन जाती है तब अपने संपर्क में आने वाले सभी को अपने जैसा बनाने का उपक्रम करती है। इस प्रकार यज्ञकुण्ड में समिधा जिस प्रकार से अपना जीवन जीती है, उसी प्रकार से मानव को जीवन जीने की वह प्रेरणा भी प्रदान करती है।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

पृष्ठ 2 का शेष-रामायण में सर्वोच्च शासक...

कहा जाये वैसा ही दूसरों से कहने वाला हो।

कच्छिद् व्यपास्तानहितान् प्रतियातांश्य सर्वदा।

दुर्बलाननंवज्ञाय वर्तसे रिपुसूदन।। अयोध्या सर्ग 100.37

शत्रुसूदन। जिन शत्रुओं को तुमने राज्य से निकाल दिया है, वे यदि फिर लौट कर आते हैं तो तुम उन्हें दुर्बल समझकर उनकी उपेक्षा तो नहीं करते हो?

कच्छित् ते दयिता: सर्वे कृषि गोरक्षजी विन:।

वार्तायां संश्रितस्तात लोकोऽयं सुश्वम् मेधते।। अ. का. 100.47

तात। कृषि और गौ रक्षा से आजीविका चलाने वाले सभी वैश्य तुम्हारे प्रीतिपात्र है न? क्योंकि कृषि और व्यापार आदि में संलग्न होने पर ही यह लोक सुखी एवं विकासशील बनता है।

कच्चिद दुर्गाणि सर्वाणि धनधान्यायुधोदकैः।

यन्त्रैश्च प्रतिपूर्णानि तथा-शिल्पिधनुर्धरै:।।

अ. का. 100.53

क्या तुम्हारे सभी दुर्ग धन-धान्य, अस्त्र-शस्त्र, जल, यन्त्र, शिल्पी तथा धनुर्धर सैनिकों से भरे-पूरे रहते हैं?

अगले श्लोक में पूछा गया है कि क्या तुम्हारी आय, व्यय से बहुत अधिक है न । तुम्हारे खजाने का धन सुरक्षित हाथों में है न?

व्यसने कच्चिदाढ्यस्य दुर्बलस्य च राघव।

अर्थे विरागा: पश्यन्ति तवामात्या बहु श्रुता:।।

अ. का. 100.58

तात्। यदि धनी और निर्धन में कोई विवाद् छिड़ा हो और वह राज्य के न्यायालय में निर्णय के लिए आये तो तुम्हारे मंत्री धनादि के लोभ से बचकर विचार करते हैं न?

अगले श्लोक में कहा गया है, 'निरपराध होने पर भी जिन्हें मिथ्या दोष लगाकर दण्ड दिया जाता है वे पक्षपात पूर्ण शासन करने वाले राजा के पुत्र और पशुओं का नाश कर डालते हैं।

कच्चिदर्थेन वा धर्ममर्थे धर्मेण वा पुन:।

उभौ प्रीतिलोभेन कामेन न विबाधसे।। अ. का. 100.62

तुम अर्थ के द्वारा धर्म को अथवा धर्म के द्वारा अर्थ को हानि तो नहीं पहुंचाते हो न? अथवा आसक्ति और लोभ रूप काम के द्वारा धर्म और अर्थ दोनों में बाधा तो नहीं आने देते?

मंत्रिभिस्त्वं यथोद्दिष्टं चतुर्भिस्त्रि भिरेव वा।

कच्चित् समस्तैर्व्यस्तैश्च मंत्र मंत्रयसे बुध।। अ. का. 100.71

क्या तुम नीति शास्त्र के अनुरूप चार या तीन मंत्रियों के साथ सबको एकत्र करके अथवा अलग-अलग मिलकर सलाह करते हो?

कच्चित् ते सफला वेदा: कच्चित् ते सफला: क्रिया:।

कच्चित् ते सफला दारा: कच्चित् ते सफलं श्रुतम्।।

अ. का. 100.72

क्या तुम वेदों की आज्ञा के अनुसार काम करके उन्हें सफल बनाते हो? क्या तुम्हारी क्रियाएं सफल होती हैं? क्या तुम्हारी स्त्रियां भी सफल (संतान वाली) हैं? क्या तुम्हारा शास्त्रज्ञान भी विनय आदि गुणों का उत्पादक होकर सफल हुआ है?

इस सर्ग में राजनीति का विस्तृत वर्णन हुआ है परन्तु विषय को अधिक विस्तार न देकर हम अरण्य काण्ड सर्ग 9 में सीता जी द्वारा श्रीराम को निरपराध प्राणियों को न मारने सम्बन्धी वर्णन पर दृष्टि डालते हैं।

जब श्रीराम सुतिक्ष्ण ऋषि की आज्ञा लेकर वन की ओर चले तब सीता जी ने स्नेहभरी वाणी से इस प्रकार कहा-

अधर्मे तु सुसूक्ष्मेण विधिना प्राप्यते महान्।

निवृत्तेन च शक्योऽयं व्यसनात् कामजादिह।। अ. का. 9.2

आर्य पुत्र। यदि आप महान् पुरूष हैं तथापि अत्यन्त सूक्ष्म विधि से विचार करने पर आप अधर्म को प्राप्त हो रहे हैं। जब काम जनित व्यसन से आप सर्वथा निवृत्त हैं, तब यहां इस अधर्म से भी बच सकते हैं। श्लोक संख्या 3 और 4 में कहा गया है, 'इस जगत् में काम से उत्पन्न होने वाले तीन ही व्यसन होते हैं-परस्त्री गमन, बिना वैर के दूसरों के प्रति क्रूर व्यवहार और मिथ्या भाषण।

फिर आगे श्लोक 3 से 8 तक में बताया गया है कि आप में (राम में) पर स्त्री गमन और मिथ्या भाषण की तो कल्पना भी नहीं कर सकते हैं परन्तु तीसरा दुर्गुण आप में देखा जा रहा है।

तृतीयं यदिदं रौद्रं पर प्राणाभि हिंसनम्।

निर्वैरं क्रियते मोहात् तच्च समुपस्थितम्।। अ. का. 9.9

परन्तु दूसरों के प्राणों की हिंसा करना जो यह तीसरा दोष है उसे लोग मोहवश बिना वैर-विरोध के किया करते हैं। एक ही दोष आपके सामने भी उपस्थित है।

अगले श्लोक में कहा गया है कि आपने दण्डकारण्य निवासी, ऋषियों की रक्षा के लिए युद्ध में राक्षसों के वध करने की प्रतिज्ञा की है।

सीता जी को यह बात अनुचित लगी और उन्होंने कहा-

त्वं हि बाणधनुष्पाणिर्भ्रात्रा सह वनं गत:।

दृष्टवा वनचरान् सर्वान् कच्चित् कुर्या: शर व्ययम्।।

अ. का. 9.14

आप हाथ में धनुष-बाण लेकर अपने भाई के साथ वन में आये है। संभव है, समस्त वनचारी राक्षसों को देखकर कदाचित् आप उनके प्रति अपने बाणों का प्रयोग कर बैठे।

क्षत्रियाणां तु वीराणां वनेषु नियतात्मनाम्।

धनुषा कार्यमेतवादार्तानामभि रक्षणाम्।। अ. का. 9.26

अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखने वाले क्षत्रिय वीरों के लिए वन में धनुष धारण करने का इतना ही प्रयोजन है कि वे संकट में पड़े हुए प्राणियों की रक्षा करें।

तब श्रीराम ने कहा कि दण्डकारण्य में रहने वाले ये मुनि बहुत दु:खी है इसलिए मुझे शरणागत वत्सल जानकर मेरे पास आये और बताया कि राक्षस लोग उन्हें मार कर खा रहे है। उन्होंने मुझसे रक्षा की याचना की है।

मया चैतद्वच: श्रुत्वा कार्त्स्न्येन परिपालनम्।

ऋषीणां दण्डाकारण्ये संश्रुतं जनकात्मजे।। अ. का. 10.16

जनक नन्दिनि। दण्डकारण्य में ऋषियों की यह बात सुन कर मैंने पूर्ण रूप से उनकी रक्षा करने की प्रतिज्ञा की है।

संश्रुत्य च न शक्ष्यामि जीवमान: प्रतिश्रवम्।।

अ. का. 10.17

मुनियों के सामने यह प्रतिज्ञा करके अब मैं जीते-जी इस प्रतिज्ञा को मिथ्या नहीं करूंगा। इससे यह ज्ञात होता है कि निरपराध व्यक्तियों के हत्यारों को दण्ड देना आवश्यक है।

इस प्रकार हमने इस छोटे से लेख के द्वारा देख लिया है कि वाल्मीकीय रामायण में राजा के कर्त्तव्य और राजनीति के विषय में आवश्य ज्ञान दिया गया है।

पृष्ठ 6 का शेष-जीवन की उत्तमता के लिए...

समिधा मानो प्रेरणा देती है कि हे मनुष्य तू मेरी तरह जीवन के पूर्वार्ध में ज्ञानवान् बन। और स्वयं ज्ञानवान् बन कर जीवन के उत्तरार्ध में अपने संपर्क में आने वाले सभी को बिना पक्षपात के ज्ञानी बनाने का उपक्रम कर।

इसी प्रकार से हे मनुष्य प्रथम तू स्वयं धन संपन्न बन जा। और जब तू धन संपन्न हो जाय, तब याद रख कि तेरे संपर्क में आने वालों को भी तू धन सम्पन्न बनाने का उपक्रम कर। इसी तरह प्रथम तो तू स्वयं अन्न सम्पन्न बन, और जब तू स्वयं अन्न सम्पन्न बन जाय, तब औरों को भी अन्न सम्पन्न बनाने का उपक्रम कर।

मनुष्य अपने पुरुषार्थ से तथा प्रभु की कृपा से जब किसी वस्तु से सम्पन्न हो जाता है, तो वह उस वस्तु को स्वयं के भोग के लिये उपयोग करना चाहता है। यह सर्व सामान्य स्थिति है। इस स्थिति में यज्ञकुण्ड में पहुँची हुई समिधा मनुष्य को परार्थ जीवन जीने की प्रेरणा देती है। मनुष्य यदि चाहे, तो यज्ञकुण्डस्थ समिधा के जीवन से प्रेरणा लेकर अपना जीवन भी वैसा बना सकता है।

जितने महापुरुष हुए हैं, वे सभी इसी समिधा की तरह अपना जीवन जीते रहें हैं। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी प्रथम तो स्वयं आस्तिक बनें, ऋषियों के ज्ञान से सम्पन्न बनते रहे। प्रत्येक महापुरुष प्रथम स्वयं बनते रहे हैं और फिर वह अपने सम्पर्क में आने वाले को अपना जैसा बनाने का प्रयत्न करते है। इसका कारण यही है कि वे यज्ञकुण्ड की समिधा की तरह जीवन जीने का व्रत लेकर चलते रहे हैं।

सामान्य मनुष्य भी यज्ञकुण्डस्थ समिधा से यह प्रेरणा ले सकता है। यदि मनुष्य जीवन का पूर्वार्ध कुछ बनने के लिये व्यतीत करने का संकल्प करता है, तो वह प्रभुकृपा से कुछ न कुछ बन ही जाता है। जब वह कुछ बन जाता है, जब वह कुछ वस्तुओं से सम्पन्न हो जाता है, तब वह अपने संपर्क में आने वाले कम से कम दो चार जनों को भी यदि अपने जैसा बना देता है, तो समझना चाहिये उसका जीवन यज्ञकुण्ड की समिधा की तरह है।

इसी तरह से यज्ञकार्य में उपयुक्त अचेतन पदार्थ से प्रेरणा लेकर मानव अपने जीवन को उत्तम बनाने का मार्गदर्शन-प्रेरणा प्राप्त कर सकता है।

वेदवाणी

राजा वरुण सब-कुछ जानता है

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्।
द्वौ सन्निषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः।।

-अथर्व० ४।१६।२

ऋषि-**ब्रह्मा**।।देवता-**वरुणः**।।छन्दः-**त्रिष्टुप्**।।

विनय-पाप से वास्तव में डरने वाले मनुष्य संसार में विरले ही होते हैं। प्रायः लोग पाप करने से नहीं डरते, किन्तु पापी समझे जाने से डरते हैं। जहाँ कोई देखने वाला न हो वहाँ अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाना, कोई पाप कर लेना, साधारण बात है। पाप व अपराध-कर्म से बचने की कोई कोशिश नहीं करता; कोशिश तो इस बात की होती है कि हम वैसा करते हुए कहीं पकड़े न जाएं। यही कारण है कि मनुष्य अपने बहुत-से कार्य छिपकर अकेले में करने को प्रवृत्त होता है, परन्तु यदि उसे इस संसार के सच्चे, एकमात्र राजा वरुणदेव की जानकारी हो तो वह ऐसे घोर अज्ञान में न रहे। यदि उसे मालूम हो कि वे जगत् के ईश्वर वरुण भगवान् सर्वव्यापक और सर्वद्रष्टा हैं तो वह पाप के आचरण करने से डरने लगे, वह एकान्त में भी कभी पाप में प्रवृत्त न हो सके। यदि हम समझते हैं कि हम कोई काम गुप्त रूप में कर सकते हैं तो सचमुच हम बड़े धोखे में हैं। उस सर्वद्रष्टा, सर्वव्यापक वरुण से तो कुछ भी छिपाकर करना असम्भव है। जब हम दो आदमी कोई गुप्त मन्त्रणा करने के लिए किसी अंधेरी-से-अंधेरी कोठड़ी में जाकर बैठते हैं और सलाहें करने लगते हैं तो यद्यपि हम समझ रहे होते हैं कि हम दोनों के सिवाय संसार में और कोई इन बातों को नहीं जानता, तथापि इन सब बातों को वह वरुण देव वहीं तीसरा होकर बैठा हुआ सुन रहा होता है। यदि हम वहां से उठकर किसी किले में जा बैठें, या किसी सर्वथा निर्जन, वन में पहुँच जाएं तो वहां पर भी वह वरुणदेव तो तीसरा साक्षी होकर पहले से बैठा हुआ होता है। उससे छिपाकर हम कुछ नहीं कर सकते। यदि हम दूसरे किसी आदमी को भी कुछ नहीं बताते, केवल अपने ही मन में कुछ सोचते हैं, तो वह वरुण उसे भी जानता है, सब सुनता है। हमारे चलने या ठहरने को, हमारी छोटी-से-छोटी चेष्टा को वह जानता है। जब हम दूसरों को धोखा देते हैं, ठग लेते हैं और समझते हैं कि इसका किसी को पता नहीं लगा, तब हम स्वयं कितने भारी धोखे में होते हैं! क्योंकि, उस वरुण को तो सब-कुछ पता होता है और हमें उसका फल भोगना पड़ता है।

विनोद कुमार सेठ जालन्धर आर्य समाज के सातवीं बार प्रधान

जालन्धर आर्य समाज मंदिर अड्डा होशियारपुर का वार्षिक चुनाव दिनांक 9 जून 2019 रविवार को सम्पन्न हुआ। चुनाव की अध्यक्षता श्री राजेश वर्मा द्वारा की गई। सर्वप्रथम आर्य समाज के कोषाध्यक्ष श्री सोहन लाल सेठ ने गत वर्ष 2018-19 के सम्पूर्ण आय व्यय का ब्यौरा पढ़ कर सुनाया जिसे सर्वसम्मति से पारित किया गया। प्रचार मंत्री श्री श्रवण भारद्वाज जी ने गत वर्ष में हुई समाज की गतिविधियों की विस्तृत रिपोर्ट पेश की। सभी उपस्थित सभासदों ने करतल ध्वनि से इसकी सराहना की। अन्त में अगले वर्ष के लिये अधिकारियों के चयन की कार्यवाही आरम्भ हुई। श्री जसवन्त राय जी ने सुझाव दिया कि पिछली अन्तरंग सभा बहुत बढ़िया ढंग से कार्य कर रही है इसलिये इस अन्तरंग के कार्यकाल को एक वर्ष और बढ़ा दिया जाए। इस पर सभी सदस्यों ने अपनी स्वीकृति दे दी और श्री विनोद कुमार सेठ लगातार सातवीं बार सर्वसम्मति से प्रधान पद के लिये चुने गये और अन्तरंग सभा के चयन का भी उन्हें अधिकार दिया गया। प्रधान जी ने निम्नलिखित अधिकारियों के नामों की घोषणा कर दी। वरिष्ठ उप प्रधान श्री राजेश वर्मा, महामंत्री श्री सोहन लाल सेठ, प्रचार मंत्री श्री श्रवण भारद्वाज जी, कोषाध्यक्ष श्री रमेश कालड़ा , लेखा निरीक्षक श्री जसवन्त राज। अंत में प्रधान जी ने सभी का धन्यवाद किया। इस अवसर पर श्री राम कृष्ण अरोडा, नवल किशोर, जीवन शर्मा, राजेश शर्मा, अश्विनी शूर, श्रीमती उषा शर्मा, नीलम सेठ, किरण सेठ, सुदेश रानी आदि अनेक गणमान्य लोग उपस्थित रहे। जलपान के पश्चात बैठक समाप्त हुई।

-सोहन लाल सेठ महामंत्री

मानव हो मानवता धारो

पं.-नन्दलाल निर्भय सिद्धान्ताचार्य भजनोपदेशक आर्य सदन बहीन, जनपद पलवल (हरियाणा)

मानवत चोला है अनमोल, इसे मत व्यर्थ गंवाओ रे!
अपने ज्ञान चक्षु लो खोल, वेद पथ को अपनाओ रे!!
शुभ कर्मों से मिलता जीवन।
इससे बड़ा नहीं, कोई धन।।
लो तुम धर्म तुला पर तोल, स्वयं समझो, समझायो रे!
अपने ज्ञान चक्षु लो खोल, वेद पथ को अपनाओ रे!!1।।
ईश्वर दयावान, न्यायकारी।
उसकी लीला, जग से न्यारी।
क्यों तुम होते डांवाडोल, विश्व स्वामी को ध्याओ रे!
अपने ज्ञान चक्षु लो खोल, वेद पथ को अपनाओ रे!!2।।
क्यों फिरते हो, मथुरा, काशी।
जगदीश्वर है, घट-घट वासी।।
सिर पर बजे काल का ढोल, प्रभु को मत विसराओ रे!
अपने ज्ञान चक्षु लो खोल, वेद पथ को अपनाओ रे!!3।।
बिन पग चले, सुनें बिन काना।
बिन कर कर्म, करे विधि नाना।
देता खोल सभी की पोल, प्रभु की महिमा गाओ रे!
अपने ज्ञान चक्षु लो खोल, वेद पथ अपनाओ रे!!4।।
रहे न जग में, रावण, बाली।
जरासंध से, मिटे कुचाली।।
जिनके संग थे, भारी टोल, पढ़ो, इतिहास, पढ़ाओ रे!
अपने ज्ञान चक्षु लो खोल, वेद पथ को अपनाओ रे!!5!!
जिस दिन काल बली आएगा।
कान पकड़कर, ले जाएगा।
हो जाएगा बिस्तर गोल, बावलो! मत इतराओ रे!
अपने ज्ञान चक्षु लो खोल, वेद पथ को अपनाओ रे!!6!!
मानव हो मानवता धारो।
कुछ तो अच्छा-बुरा विचारो।।
सीखो, करना, अच्छा रोल, कमाई नेक कमाओ रे!
अपने ज्ञान चक्षु लो खोल, वेद पथ को अपनाओ रे!!7।।
"नन्द लाल" तज दो नादानी।
ठीक नहीं, करनी शैतानी।।
सबसे मीठी वाणी बोल, जगत में आदर पाओ रे!
अपने ज्ञान चक्षु लो खोल, वेद पथ को अपनाओ रे!!8!!

वधू चाहिये

अरोड़ा परिवार का लड़का, जन्म तिथि 01.04.1989, कद 5 फुट 8 इंच, शिक्षा एम.टेक. एमएनसी रोहतक में कार्यरत, अच्छा वेतन, हेतु समकक्ष योग्यता की अथवा टीचिंग पेशे में कार्यरत वधू की आवश्यकता है। सम्पर्क सूत्र 83605-36336

गुप्ता परिवार का लड़का (यमुनानगर) जन्म तिथि 02.08.1988, कद 5 फुट 8 ईंच, बीबीए, एमबीए, एयरपोर्ट बेंगलूर में एक्संटिंव पद पर कार्यरत, वेतन +6 लाख हेतु सुयोग्य एवं समकक्ष योग्यता वाली वधू चाहिये। सम्पर्क सूत्र 83605-36336

तलाकशुदा खत्री परिवार का लड़का, बच्चा नहीं, जन्म तिथि 06.12.1984, शिक्षा एम टेक (सिविल), पंजाब सरकार में कार्यरत (चण्डीगढ़ में) कद 5 फुट 10 ईंच, चण्डीगढ़ में अपना मकान, वेतन 60,000/-रुपये मासिक हेतु सरकारी सेवा में कार्यरत अविवाहित कन्या की जरूरत है। सम्पर्क सूत्र 83605-36336

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित। सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org